धरती यदि सूखी, तो क्या बारिश ही दोषी. . .

श्वेता आनंद

देश में पड़ रही भीषण गर्मी और बारिश में होने वाली देरी से लगभग सभी परेशान हैं और देवताओं को मनाने–पूजने का सिलसिला शुरू हो चुका है। बारिश लोगों के लिए उत्सव और खुशी का माहौल लेकर आती है, देश के लिए यह किसी वरदान से कम नहीं होती। इस बारिश पर तोहमत भी हैं, मानसून अच्छा न होने से भारत में लाखों लोग प्रतिवर्ष या तो सूखे की वजह से फसल खराब होने या फिर भारी बाढ़ में पूरे गाँव, जंगल और उपजाऊ जमीन सहित फसल के डूब जाने की वजह से परेशान और पीड़ित होते हैं।

मानसून का खेती के संदर्भ के प्रभाव पर नेशनल अकेडमी ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च मैनेजमेण्ट हैदराबाद के निदेशक डॉ प्रमोद कुमार जोशी कहते हैं कि 'कृषि–खेती आज भी हमारे देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 15.7 प्रतिशत का एक बड़ा हिस्सा देती है, आज भी भारत की लगभग आधी आबादी आज भी खेती पर ही निर्भर है, भले ही कईयों ने इसे मजबूरी के रूप में अपनाया हुआ है, क्योंकि अभी भी मानसून की दगा से बाढ़, सूखा अथवा अपर्याप्त मदद की वजह से खेती आजीविका के लिये उतनी आकर्षक नहीं है।'।

भारत की 14 करोड़ हेक्टेयर कृषि भूमि में से 8 करोड़ हेक्टेयर बारिश पर ही निर्भर है, अर्थात करोड़ों लोगों का जीवनयापन और भोजन इत्यादि सीधे–सीधे वर्षा की मात्रा पर ही निर्भर है। लगभग 60 प्रतिशत खेती कृत्रिम रूप से सिंचित भूमि के सहारे है जो कि खेत में उपलब्ध भूजल पर ही निर्भर करता है, न कि नहरों या बाँधों पर (लेकिन यह भूजल भी उसी समय भरेगा जब अच्छी बारिश होगी)। ऐसी लोकप्रिय धारणा बनी हुई है कि पंजाब, हरियाणा और पश्चिम उत्तरप्रदेश का हरित और उपजाऊ क्षेत्र बाँधों के पानी के कारण है, जबकि ऐसा नहीं है, यह इलाका अधिकतर भूजल द्वारा सिंचित है। एक वरिष्ठ विज्ञान पत्रकार श्री अमित भट्टाचार्य द्वारा मानसून पर आधारित किये गये अध्ययन में इस बात का खुलासा हुआ है।

वरिष्ठ जल विशेषज्ञ श्री अनुपम मिश्र कहते हैं, ष्हजारों वर्षों से भारत के किसान बारिश पर ही निर्भर रहते आये हैं, सो वे जानते हैं कि परिस्थिति का सामना कैसे किया जाये,

कौन सी फसल ली जाये, किस जगह ली जाये, वर्ष के किस समय ली जाये.. आदि। यह ज्ञान उनका परम्परागत ज्ञान है, दुर्भाग्य से आज की हालत यह हो गई है कि इन किसानों की 'जरूरत' को सरकारों और बाजार की शक्तियों द्वारा मिलजुलकर नियंत्रित करने की कोशिश की जा रही है, इसमें किसान भ्रमित भी हो रहा है और उसे आर्थिक नुकसान भी हो रहा है। पर्यावरण और मिट्टी को होने वाला नुकसान तो अपनी जगह है ही..।' इसका उल्लेख अनुपम जी ने अपनी सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तक 'आज भी खरे हैं तालाब' में किया है।

किसान पहले भी आत्मनिर्भर थे और आज भी हो सकते हैं, लेकिन जब से बाजार आधारित अर्थव्यवस्था ने अपने पैर पसारे हैं, किसानों को औद्योगिक माँग के अनुरूप खेती करने के लिये प्रेरित (बल्कि बाध्य) किया जा रहा है। बड़े औद्योगिक घराने अब खेती–किसानी–कृषि को भी 'पैसा बनाने' और व्यापार केन्द्रित गतिविधि का उपक्रम बनाने पर तुले हैं, जो किसानों और पर्यावरण दोनों के लिये ही घातक है। अधिक से अधिक किसानों को अपने पक्ष में करके उनसे एक ही तरह की फसल लेने हेतु दबाव बनाया जा रहा है, भले ही खतरनाक कीटनाशकों और उर्वरकों के उपयोग तथा मिट्टी के अत्यधिक दोहन के कारण पूरा खेत ही बंजर क्यों न हो जाये। यदि बड़े औद्योगिक घराने अपनी खेती के लिये मानसून पर निर्भर रहने लगें तो उनकी जोखिम अत्यधिक बढ़ जाएगी, और 'धंधे' में यह बात ठीक नहीं है, इसलिये बड़े–बड़े बाँधों और वाटर प्रोजेक्टों को तेजी से मंजूरी दी जा रही है।

भारत में वर्षाकाल सामान्य तौर पर जून से सितम्बर तक होता है, जिसमें औसतन 1100 मिमी वार्षिक बारिश होती है, लेकिन बारिश का यह औसत इतने बड़े भारत में बहुत अधिक भिन्नता लिये होती है, जैसे कि एक तरफ राजस्थान के कई भागों में बारिश का वार्षिक औसत सिर्फ 100 मिमी है तो दूसरी तरफ मेघालय में अधिकतम 11,000 मिमी बारिश भी हो जाती है। जाहिर है कि तर्कसंगत रूप से भिन्नता लिये हुए फसलें उगाना सही रहेगा, जिसमें पानी की उपलब्धता, तापमान, मिट्टी का प्रकार, स्थानीय जरूरतें जैसे सभी कारक शामिल करना चाहिये।

उत्तराखण्ड में बड़े बाँधों के निर्माण के खिलाफ आंदोलन चलाने वाले विमलभाई कहते हैं, 'हम लोग प्रकृति द्वारा मानव प्रजाति को विभिन्न प्रकार के भोज्य देने की क्षमता के प्रति सम्मान नहीं दिखा रहे, जबकि प्रकृति अलग–अलग मौसम और क्षेत्र के अनुसार अनाज, सब्जियाँ और फल उत्पादन करने में सक्षम है। हम लोग ठण्ड के दिनों में आम की माँग करते हैं, जबकि यह गर्मियों का फल है, इसी प्रकार हम गर्मियों में संतरों की माँग करने लग जाते हैं, जबकि यह ठण्ड के दिनों में उत्पन्न होता है, यह अप्राकृतिक है।' आगे वे कहते हैं, 'प्रकृति के विरुद्ध जाकर हम अपनी इच्छाएं उस पर लादना चाहते हैं, इसलिये वह भी हमसे दूर जा रही है। अब हम 'बाजार' की इच्छाओं के अनुरूप खाद्य पदार्थ खाना चाहते हैं, जिसका गहरा प्रतिकूल असर हमारे स्वास्थ्य पर

पड़ रहा है। एक सन्तुलित, सम्पूर्ण और पौष्टिक भोजन की जगह हम वर्ष भर एक जैसे खाद्य पदार्थों के समूह की खपत करते जा रहे हैं।'

खाद्य पदार्थों की विविधता में कमी तथा किसानों द्वारा उगाई जाने वाली फसलों के बाजारीकरण से विजय जड़धारी भी बहुत परेशान हैं। विजय एक किसान और सामाजिक कार्यकर्ता हैं जो उत्तराखण्ड के 'बीज बचाओ आंदोलन' के लिये असाधारण कार्य कर रहे हैं। 'बीज बचाओ आंदोलन' ने इलाके में बेहतरीन काम किया है और इस सत्याग्रही आंदोलन के कारण कई खाद्य फसलें, सब्जियों, बीजों, पेड़ों, फलों और मसालों को भी संरक्षित करने में सफलता हासिल हुई है। जिन दिनों भारत में कृषि परम्परागत और मुख्य व्यवसाय माना जाता था उस समय प्रमुख भोज्य पदार्थ 'रागी, ज्वार और बाजरा' ही थे, जो कि बेहद पौष्टिक और सूखा प्रतिरोधी थे। लेकिन धीरे–धीरे इस भोजन को 'गँवार का भोजन' (जिसे गाँव वाले खाते हैं) कहकर दुष्प्रचारित किया जाने लगा, और उसकी जगह ले ली, चावल और गेहूं ने, जो खाने में स्वादिष्ट हैं, छूने में कोमल लगता है और अमीरों की आँखों को भाता है। इसका प्रचार होने के कारण लोग इसे अधिक खाने लगे जिससे इन खाद्य जिंसों का बड़ा बाजार तैयार हो गया। मजबूरी में किसान अधिक पानी पर आधारित तथा रासायनिक उर्वरकों से भरपूर गेहूं–चावल की फसलें उगाने लगे।

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने ग्रामीण भारत की अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिये बनाये गये कार्यक्रम 'भारत निर्माण' को प्रचारित करते हुए अक्सर इस बात पर जोर दिया है कि कृषि उत्पादन वृद्धि के लिये गाँवों में मानव निर्मित सिंचाई प्रणाली को बढ़ावा दिया जायेगा। लेकिन परिणामस्वरूप यह बड़े बाँधों के निर्माण को सही ठहराने में उपयोग हुआ, जिसकी थ्योरी के मुताबिक मानसून के महीनों में बड़े बाँधों में इतना पानी संग्रहित कर लिया जाये कि वह पानी वर्ष भर काम आ सके। जबकि देश भर में बड़े बाँधों के खिलाफ जन–आंदोलन चल रहे हैं, क्योंकि बड़े बाँधों की वजह से स्थानीय प्राकृतिक संसाधन, जैव विविधता, पहाड़ियाँ, जमीन, जंगल, नदियाँ, जलचरों का जीवन तो खतरे में पड़ ही जाता है, साथ ही हजारों लोगों का अपनी मूल जमीन से विस्थापन भी हो जाता है। जल भण्डारण और बड़ी–बड़ी सिंचाई परियोजनाएं बीतें वर्षों के दौरान लगातार असफल सिद्ध हुई हैं, क्योंकि उनसे होने वाली सिंचाई घट रही है जिससे खेती के कामों का दायरा घट रहा है। एक तरफ बड़े बाँधों और परियोजनाओं के कारण आम जनता के टैक्स का पैसा भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाता है, वहीं इनके कारण सिंचित जमीन के बड़े हिस्से में भी प्रतिवर्ष कमी आ रही है।

यह तथ्य प्रसिद्ध पर्यावरणविद हिमांशु ठक्कर द्वारा केन्द्रीय कृषि मंत्रालय द्वारा सूचना के अधिकार के तहत माँगी गई जानकारी के दस्तावेजों में सामने आया। सन 1991 से 2007 के बीच वर्तमान सभी बड़ी परियोजनाओं के जल संसाधन प्रबन्धन में भारी घाटे के बावजूद इन्हें जारी रखा गया, और इनमें जनता का पैसा बेरहमी से बर्बाद किया

गया। इन परियोजनाओं को कृषि उत्पादन में बढ़ावा देने के नाम पर बनाया जाता रहा और सारा दोष मानसून की अनियमितता और बेरुखी पर मढ़ दिया जाता रहा।

हिमांशु ठक्कर, जो कि 'डैम, रिवर्स एण्ड पीपुल' के दक्षिण एशिया नेटवर्क के लिये काम करते हैं, आगे कहते हैं कि आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार भारत में पिछले 15 वर्ष में बड़ी और मझोले आकार की सिंचाई परियोजनाओं पर एक लाख बयालीस हजार करोड़ (1,42,000 करोड़) रुपया खर्च किया जा चुका है, लेकिन 'सिंचित भूमि' के क्षेत्रफल में कोई बढ़ोतरी नहीं हो सकी है, जबकि 'भारत निर्माण' के प्रमुख लक्ष्यों में से एक है सिंचित भूमि को अधिक से अधिक बढ़ाना। यहाँ तक कि इसके पहले चलने वाला कार्यक्रम जिसे 'एक्सेलेरेटेड ईरिगेशन बेनेफिट्स प्रोग्राम' कहा जाता था, उसमें भी सिंचित भूमि के रकबे में कोई खास बढ़ोतरी नहीं हुई थी। बल्कि इसके उलट बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के कारण सिंचित भूमि में 24 लाख हेक्टेयर के क्षेत्र की कमी आ गई थी।

सिंचाई के क्षेत्र में भारी भ्रष्टाचार की ओर संकेत करते हुए जड़धारी बताते हैं, 'उत्तराखण्ड के चमोली क्षेत्र में लगातार सिंचाई और बाँध क्षेत्र से सम्बन्धित अधिकारी भ्रष्टाचार के मामलों में फँसते रहते हैं, हाल ही में एक कनिष्ठ अधिकारी रवीन्द्र प्रसाद के बिस्तर के अन्दर से 55 लाख रुपये नकद बरामद किये गये, जबकि उसके मकान पर पड़े छापे में पुलिस अधिकारियों को 3 करोड़ की सम्पत्ति प्राप्त हुई। रवीन्द्र प्रसाद का कार्य इलाके में तालाब और छोटी नहरें बनाने की देखरेख करने का था। नेशनल रेनफेड एरिया प्राधिकरण के एक वरिष्ठ अधिकारी ने नाम गुप्त रखने की शर्त पर बताया कि राज्य सरकारें कई अधूरी सिंचाई योजनाओं को कागजों पर पूरा बता देती हैं और इसमें जमकर भ्रष्टाचार किया जाता है।

गाँधी शान्ति फाउण्डेशन नई दिल्ली से जुड़े अनुपम मिश्र कहते हैं कि 'कम से कम पानी एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें भारत कतई गरीब नहीं है, राजस्थान के कई इलाकों में लोग आज भी परम्परागत तरीके से बारिश का पानी एकत्रित करते हैं, और कम से कम पानी में भी कई प्रकार की फसलें उगा लेते हैं।' पानी संग्रहित करने और बचाने तथा कृषि उत्पादन को बढ़ाने की अन्य कई तकनीकें उपलब्ध हैं, जैसे 'सिस्टम ऑफ राइस इंटेन्सिफिकेशन' (श्री) या 'मेडागास्कर मॉडल', इन तकनीकों को हाल ही में त्रिपुरा और तमिलनाडु सरकारों ने अपनाया है।

अखिल भारतीय किसान सभा के संयुक्त सचिव विजू कृष्णन कहते हैं कि इस तकनीक के जरिये चावल की खेती कम से कम पानी में की जा सकती है। ध्यान रखें कि चावल की खेती में सर्वाधिक पानी की खपत होती है, लेकिन इस तकनीक से खेती करने पर पानी कम लगने के साथ ही प्रति हेक्टेयर आठ टन तक का उत्पादन भी हो सकता है। श्री ठक्कर का मानना है कि श्री जैसी प्राकृतिक तकनीक देश के चावल उगाने वाले आधे इलाके में अपनाने पर भी कम से कम 6 मिलियन हेक्टेयर की सिंचित

भूमि पर सिंचाई के लिये पानी बचाया जा सकता है। बाँधों का उपयोग मुख्यतः सिंचाई के लिये होना चाहिये और वही काम वे नहीं कर पा रहे, फिर हमें बड़े बाँध क्यों चाहिये? ठक्कर सवाल करते हैं।

पानी के भारी दुरुपयोग और कुप्रबन्धन के बारे में खाद्य और कृषि नीति विशेषज्ञ देविन्दर शर्मा कहते हैं कि राजस्थान के कुछ शहरों में बड़े–बड़े गोल्फ कोर्स, होटल, बड़े भवन, गन्ने के खेत और संगमरमर के खदान उद्योगों द्वारा पानी की भारी बरबादी की जा रही है। इन सभी की वजह से भूजल तेजी से नीचे जा रहा है, उदाहरण के लिये एक 18 होल वाले गोल्फ के मैदान को हराभरा रखने के लिये जितना साफ पानी उपयोग में लिया जाता है उतने में 20,000 घरों की पानी की जरूरत पूरी की जा सकती है। राजस्थान में जिस तरह भूजल का दोहन किया जा रहा है उससे जल्दी ही यहाँ भी भीषण जलसंकट उत्पन्न हो सकता है, कहने का मतलब ये कि जल संकट या पानी की कमी के लिये मानसून को दोष नहीं दें, बल्कि यह देखें कि पानी का कुप्रबन्धन कितना हो रहा है, और उसे कैसे रोका जा सकता है।

बड़े बाँध और विशाल नदी–जोड़ो परियोजनाएं सदा से विवाद का केन्द्र रही हैं। विशेषज्ञों के अनुसार ऐसी नदी–जोड़ो परियोजनाओं से जहाँ एक ओर लाखों लोग विस्थापित होंगे, वहीं दूसरी ओर नदी (या नदियों) के पर्यावरण, नदियों के पारिस्थितिकीय संतुलन में बिगाड़ आयेगा, विभिन्न राज्य नदी के पानी के बँटवारे के लिये नये–नये झगड़े पैदा करेंगे, तथा जो जल–समझौते पहले से ही राज्यों के बीच हैं, उन्हें नये सिरे से परिभाषित करने की माँग करेंगे। एक तरफ बड़े बाँधों पर बहस चल ही रही है और उधर भारतीय मौसम विभाग (आईएमडी) मानसून की भविष्यवाणी सही तरीके से नहीं बता सकने की वजह से लोगों के गुस्से का केन्द्र बना हुआ है। विज्ञान लेखक पल्लव बागला कहते हैं कि भारत में 1994 में भीषण बाढ़ आई थीं, और 1987, 2002, 2004 तथा 2009 में सूखा पड़ा था, जबकि मौसम विभाग ने सामान्य मानसून की भविष्यवाणी की थी। मौसम विभाग ने 2010 में भी सामान्य मानसून की भविष्यवाणी की है। बागला कहते हैं कि, इतने महत्वपूर्ण विभाग को किसानों तथा नीति निर्माताओं को मौसम के बारे में एकदम सटीक जानकारी देने में सक्षम होना चाहिये ताकि वे अच्छी अथवा बुरी से बुरी स्थिति के लिये भी खुद को तैयार कर सकें। पिछले वर्ष भी सामान्य मानसून की घोषणा के बावजूद देश में बारिश औसतन 22 प्रतिशत कम हुई, जिसका सीधा असर चावल की कमी से हुआ तथा खाद्य पदार्थों की मुद्रास्फीति बढ़ती चली गई। जब ऐसा होता है उस समय गरीब किसान सबसे अधिक प्रभावित होता है।

अच्छी फसल और बारिश की सटीक भविष्यवाणी के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए नेशनल क्लाइमेट सेंटर के निदेशक डीएस पई कहते हैं कि 'यदि अगले दिन बारिश होने की सटीक सम्भावना व्यक्त की जायेगी तो किसान अपने खेतों में सिंचाई नहीं करेगा वरना उसके खेतों में अधिक पानी जमा हो सकता है जो फसल के लिये नुकसानदायक होगा, इसी प्रकार जब किसान को पता होगा कि निकट भविष्य में

बारिश के कोई आसार नहीं हैं तो वह पहले से ही पानी की अतिरिक्त व्यवस्था करके रखेगा या पानी कम उपयोग करके उसे बचायेगा, जिससे फसल अच्छी होगी। मौसम विभाग की आलोचना करते हुए ठक्कर कहते हैं कि मौसम विभाग आम जनता से मौसम सम्बन्धी महत्वपूर्ण आँकड़े छिपाकर रखता है। यदि मौसम विभाग विभिन्न जिलों और तहसीलों के मौसम तथा बारिश सम्बन्धी आँकड़े सतत अद्यतन करता रहे तो सूरत में 2006 की बाढ़, उड़ीसा में 2008 तथा दामोदर घाटी में 2009 की बाढ़ को रोका जा सकता था, जिसमें बाँधों की भूमिका अहम थी। भारत में हमेशा जन–धन की हानि सिर्फ इसलिये ही होती है क्योंकि हमारे पास जो आँकड़े उपलब्ध होते हैं, वह गलत, अधूरे और मानसून के समयानुकूल नहीं होते, यदि सही और सटीक आँकड़े मिल भी जाते हैं तो बाँध पर मौजूद अकुशल और गैर–जिम्मेदार कर्मचारी उनका सही उपयोग नहीं कर पाते, नतीजे में बाढ़ या सूखा होता है। भू–विज्ञान मंत्रालय के सचिव डॉ शैलेष नायक ने आश्वासन दिया है कि जल्दी ही वर्तमान व्यवस्था को बदलते हुए 'नेशनल मिशन ऑफ मानसून' नामक कार्यक्रम उसकी जगह लेगा।

2009 में नासा की एक रिपोर्ट के अनुसार देश के प्रमुख अन्न उत्पादन क्षेत्र पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तरप्रदेश में भूजल की स्थिति बेहद खराब हो चुकी है। पानी के भारी दुरुपयोग और तथाकथित विकास के नाम पर भवन निर्माण गतिविधियों के चलते जमीन का अधिकतर पानी सोखा जा चुका है, जिसे जल्दी से 'रीचार्ज' कर पाना अब असम्भव है, क्योंकि भूजल रीचार्ज करने के लिये प्रकृति की अपनी एक समय–सीमा होती है, हमें उस प्राकृतिक प्रक्रिया का सम्मान करना चाहिये और भूजल का उपयोग सीमित करने के साथ–साथ भूजल पुनर्भरण पर पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

मानसून को दोष देने की बजाय हमें अपने अन्दर झाँककर देखना चाहिये, कि हम प्रकृति के कितने बड़े दोषी हैं। स्थिति में परिवर्तन लाने के लिये हमें प्रकृति के साथ चलना होगा, जब हम उसे इतना बिगाड़ चुके हैं तो उसे सुधारने के लिये एक निश्चित वक्त तो देना ही होगा। बात–बात पर मानसून को दोष देने पर बात नहीं बनेगी। (सप्रेस/ इंडिया वाटर पोर्टल)